# जप योग साधना

*–विमल कुमार चौरड़िया*

विश्व के समस्त विवेकशील जीव इस संसार के आवागमन से मुक्त होना चाहते हैं। आवागमन से मुक्त होने का एक मात्र साधन है 'स्व' स्वरूप में रमणता, स्थिरता।

जिस-जिस उपाय से चित्त का 'स्व' स्वरूप के साथ योग होता है उनको योग कहते हैं।

पू. हरिभद्र सूरिजी ने लिखा है–'मुक्खेण जोयणाओ जोगो' जिन साधनों से मोक्ष का योग होता है उनको योग कहते हैं।

योग एक ही है किन्तु उसके साधन असंख्य हैं। मुख्यतः योग ३ भागों में विभक्त किये जा सकते हैं–१. ज्ञान योग, (२) कर्म योग, (३) भक्ति योग। मोटे रूप में तीनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं, सहयोगी हैं। ज्ञान योग में ज्ञान सेनापति और कर्म एवं भक्ति सैनिक हैं; कर्म योग में कर्म सेनापति और ज्ञान और भक्ति सैनिक हैं; भक्ति योग में भक्ति सेनापति है और ज्ञान और कर्म सैनिक हैं। इन तीनों योगों की असंख्य पर्याय हैं। मुख्यतः निम्नलिखित हैं–

(१) ज्ञान योग के पर्याय–१. ब्रह्म योग, २. अक्षर ब्रह्म योग, ३. शब्द योग, ४. ज्ञान योग, ५. सांख्य योग, ६. राज योग, ७. पूर्व योग, ८. अष्टाङ्ग योग ९. अमनस्क योग, १०. असंप्रज्ञात योग, ११. निर्बीज योग, १२. निर्विकल्प योग, १३. अचेतन समाधि योग, १४. मनोनिग्रह इत्यादि।

(२) कर्म योग के पर्याय–१. सन्यास योग, २. वृद्धि योग, ३. संप्रज्ञात योग, ४. सविकल्प योग, ५. हठ योग, ६. हंस योग, ७. सिद्ध योग, ८. क्रिया योग, ९. तारक योग, १०. प्राणोपासना योग, ११. सहज योग, १२. शक्तिपात, १३. तन्त्र योग, १४. बिन्दु योग, १५. शिव योग, १६. शक्ति योग, १७. कुण्डलिनी योग, १८. पाशुपत योग, १९. कर्म योग, २०. निष्काम कर्म योग, २१. इन्द्रिय निग्रह इत्यादि।

(३) भक्ति योग–१. कर्म समर्पण योग, २. चेतन समाधि, ३. महाभाव, ४. भक्ति योग, ५. प्रेम योग, ६. प्रपत्ति योग, ७. शरणागति योग, ८. ईश्वर प्रणिधान योग, ९. अनुग्रह योग, १०. मन्त्र योग, ११. नाद योग, १२. सुरत-शब्द योग, १३. लय योग, १४. जप योग, १५. पातिव्रत योग इत्यादि नाम भक्ति योग के पर्याय हैं।

जैन पम्परा के अनुसार योग के हेतु मन, वचन और काया है। मन ही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का कारण है। जैन परम्परा में मन को मुख्य मानकर ज्ञान योग को विशेष महत्व दिया है। मन के लिये ज्ञान योग की प्रमुखता है; काय योग के लिये कर्म योग की प्रमुखता है और वचन योग के लिये भक्ति योग की प्रमुखता है।

'जप' भक्ति योग का ही अंग है, बहिर् आत्मा से अन्तरात्मा में जाने का साधन है। जैन धर्म की अपेक्षा से नमस्कार महामंत्र के जप को ही लक्ष्य में रखकर यहाँ वर्णन करना उचित होगा।

जप करने के पूर्व, सिद्धि के लिये, कुछ प्रयोजनभूत ज्ञान आवश्यक है–

(१) पंच परमेष्ठी भगवन्तों का स्वरूप गुरु के पास से भली प्रकार समझना चाहिये।

(२) नमस्कार मंत्र का चिन्तन, मनन कर आत्मसात् कर लेना चाहिए।

(३) जैसे किसी अच्छे परिचित का नाम लेते ही उसकी छवि सामने आ जाती है, उसका समग्र स्वरूप (गुण, दोष आदि) ख्याल में आ जाता है वैसे ही जप करते समय मंत्र के अक्षरों का अर्थ, पंच परमेष्ठि का स्वरूप मन के सामने प्रगट हो जाना चाहिए।

(४) परमेष्ठि भगवन्तों का हम पर कितना उपकार है, उनके उपकार से या उनके ऋण से हम कितने दबे हुए हैं उसका ध्यान बराबर रखना चाहिए।

(५) परमेष्ठि भगवन्तों के आलम्बन के बिना भूतकाल में अनन्त भव भ्रमण करने पड़े, उनका अन्त इन्हीं के अवलम्बन से आ रहा है इसकी प्रसन्नता होना चाहिये।

(६) मानस जप करते समय काया और वस्त्र की शुद्धि के साथ-साथ मन और वाणी का पूर्ण मौन रखना चाहिए।

(७) जप का उद्देश्य पहले से ही स्पष्ट और निश्चित कर लेना चाहिए।

(८) मोक्ष प्राप्त हो, मोक्ष प्राप्त हो, सब जीवों का हित हो, सब जीव परमात्मा के शासन में रुचिवन्त हों... भव्यात्माओं को मुक्ति प्राप्त हो, संघ का कल्याण हो, विषय कषाय की परवशता से मुक्ति मिले, मैत्री आदि भावनाओं से मेरा अंतःकरण सदा सुवासित रहे ... यह भाव हो।

(९) जप करते समय कदाचित् चित्त वृत्ति चंचल रहे तो निम्नलिखित वाक्यों में से अथवा दूसरी अच्छी विचारणा में अपने चित्त को लगावें–

जगत के जीव सुखी हों, कोई जीव पाप न करे, सबको सद्बुद्धि मिले–बोधि बीज प्राप्त हो... आदि।

(१०) राग द्वेष में चित्त को नहीं लगाना, समता युक्त रखना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) समता, शान्ति और समर्पण इन तीनों को साधक जितना अधिक अपने जीवन में उतारेगा उतनी ही अधिक प्रगति होगी।

(१२) अपने सभी सम्बन्धों में आध्यात्मिकता स्थापित करनी चाहिये।

(१३) अयोग्य आकर्षणों की ओर झुकाव नहीं होना चाहिए।

(१४) किसी को भी किसी प्रकार के राग द्वेष में नहीं बाँधना चाहिये।

(१५) साधना के परिणाम के लिए अधीर नहीं होना चाहिये।

(१६) यह विश्वास रखना चाहिये कि साधना में बीते प्रत्येक पल का जीवन पर अचूक असर होता है।

(१७) नवकार सूक्ष्म भूमिकाओं में अप्रगट रूप से शुद्धि का कार्य करता है। चाहे तात्कालिक प्रभाव नहीं मालुम हो परन्तु धीरे-दीरे योग्य समय पर अपनी समग्रता में तथा अपने वातावरण में उसके प्रभाव का प्रगट रूप में अनुभव होता है।

(१८) जब तक साधक के चित्त में चंचलता, अस्थिरता, अश्रद्धा, चिन्ता आदि होते हैं तब तक वह प्रगति नहीं कर सकता।

(१९) जप साधना के लिए शान्ति, स्थिरता, अडिगता चाहिये।

(२०) साधक को गुणों का चिन्तन मनन करना चाहिये और स्वयं गुणी होना चाहिये।

(२१) साधक को श्रद्धा होनी चाहिये कि उद्देश्य की सफलता इस जप के प्रभाव से ही होने वाली है तथा जैसे-जैसे सफलता मिलती जावे उसमें समर्पण भाव अधिक होना चाहिये।

(२२) जप की संख्या के ध्यान के साथ जप से चित्त में कितनी एकाग्रता हुई इसका ध्यान रखना चाहिये।

(२३) एकाग्रता लाने के लिये भाव विशुद्धि बढ़ाना चाहिये।

(२४) जप से मन की शुद्धि होती है जिसके फल में बुद्धि निर्मल बनी रहती है ऐसा विचार रखना चाहिये।

(२५) जप करने वाले को विषयों को विष वृक्ष के समान, संसार संयोगों को स्वप्न के समान समझना; अनित्यादि भावना व उसके मर्म को समझने का चिन्तवन करना चाहिये।

(२६) जप करने वालों को श्रद्धा रखनी चाहिये कि जप से शुभ कर्म का आस्रव, अशुभ का संवर, पूर्व कर्म की निर्जरा, लोक स्वरूप का ज्ञान, सुलभ बोधिपना तथा सर्वज्ञ कथित धर्म की भवोभव प्राप्ति कराने वाला पुण्यानुबंधि पुण्य कर्म का उपार्जन होता है। आदि.....

**जप करने वालों को कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक है**–(१) दुर्व्यसनों का त्याग, (२) अभक्ष्य भक्षण का त्याग, (३) श्रावकाचार का पालन, (४) जीवन में प्रामाणिकता, (५) स्वधर्मी के प्रति वात्सल्य, (६) जप का निश्चित समय, (७) निश्चित आसन, (८) निश्चित दिशा, (९) निश्चित माला या प्रकार, (१०) निश्चित संख्या, (११) पवित्र एकान्त स्थान, (१२) स्थान को शुद्ध व पवित्र करना, (१३) सात्विक भोजन आदि।

महर्षियों ने जप के लिए कई मंत्र भिन्न-भिन्न आशयों के लिये बनाये हैं। मंत्र साधन है। अच्छे मंत्रों का श्रद्धापूर्वक, लयबद्ध, शुद्ध, आत्मनिष्ठा, संकल्प शक्ति के समन्वय के साथ किया गया जप अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। मंत्र के निरन्तर जप से होने वाले कम्पन अपने स्वरूप के साथ ध्वनि तरंगों पर आरोहित होकर पलक झपकें इतने समय में समस्त भू-मण्डल में ही नहीं अपितु १४ राजूलोक में अपना उद्देश्य प्रसारित कर देते हैं। जप के शब्दों की पुनरावृत्ति होते रहने से उच्चारित किये गये शब्दों की स्पन्दित तरंगों का एक चक्र (सर्किट) बनता है।

जिस प्रकार इलेक्ट्रो मेग्नेटिक तरंगों की शक्ति से अन्तरिक्ष में भेजे गये राकेट को पृथ्वी पर से ही नियंत्रित कर सकते हैं, लेसर किरणों की शक्ति से मोटी लोहे की चद्दरों में छेद कर सकते हैं, उसी प्रकार मंत्रों के जप की तरंगों से मंत्र योजकों द्वारा बताये गये कार्य हो सकते हैं। जप क्रिया में साधक को तथा वातावरण को प्रभावित करने की दोहरी शक्ति है। जप करने वाला मन के निग्रह से सारे विश्व के प्राण मण्डल में स्पन्दन का प्रसार कर देता है। मन एक प्रेषक यंत्र की तरह कार्य करता है। मन रूपी प्रेषक यंत्र (Transmitter) से प्राण रूपी विद्युत द्वारा विश्व के प्राण मण्डल में स्पन्दन फैलाया जाता है, जो उन जीवों के मन रूपी यंत्रों (Receiver) पर आघात करते हैं जिनमें जप करने वाले योगी कोई भावना जगाना चाहते हैं। क्योंकि वाणी का मन से, मन का अपने व्यक्तिगत प्राण से और अपने प्राण का विश्व के प्राण से उत्तरोत्तर सम्बन्ध है।

साधारण रूप में प्रत्येक शब्द चाहे किसी भाषा का हो, मंत्र है। अक्षर अथवा अक्षर के समूहात्मक शब्दों में अपरिमित शक्ति निहित है। मंत्रों से वांछित फल प्राप्त करने के लिए मंत्र योजक की योग्यता, मंत्र योजक की शक्ति, मंत्र के वाच्य पदार्थों की शक्ति, उन वाच्य पदार्थों से होने वाले शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सौर मण्डलीय शक्ति का प्रभाव तो है ही, साथ ही जप करने वाले की शक्ति, आत्म स्थित भाव, अखण्ड विश्वास, निश्चल श्रद्धा, आत्मिक तेज, मंत्र की शुद्धि, मंत्र की सिद्धि आदि का विचार भी आवश्यक है।

जप का मूल साधन ध्वनि है। भारतीय ध्वनि शास्त्र में स्नायविक और मानसिक चर्चा के आधार स्वरूप ध्वनि के चार स्तर हैं–(१) परा, (२) पश्यन्ती, (३) मध्यमा, (४) वैखरी।

(१) परा–परा वाक् मूलाधार स्थित पवन की संस्कारीभूता होने के कारण एक प्रकार से व्यक्त ध्वनि की मूल उत्स शक्ति की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह है। वहीं 'शब्द ब्रह्म' या 'नाद ब्रह्म' है। स्पन्दनशून्य होने के कारण वह बिन्दुरूपा है। यह निर्विकल्प, अव्यक्त अवस्था में है। ध्वनि अपने बीज रूप में है।

(२) पश्यन्ती–परा स्तर से ऊपर चलकर नाभि तक आने वाली उस हवा से अभिव्यक्त होने वाली ध्वनि मनोगोचरीभूत होने से पश्यन्ती कही जाती है। सविकल्प ज्ञान के विषय रूप है। यही मानस के चिन्तन प्रक्रिया के रूप ध्वनि संज्ञा की तरह चेतना का अंग बन जाती है।

(३) मध्यमा–ध्वनि उच्चारित होकर भी श्रव्यावस्था में नहीं आ पाती है।

(४) वैखरी–श्रव्य वाक् ध्वनि रूप से मान्य है। यह मुख तक आने वाली हवा के द्वारा ऊर्ध्व क्रमित होकर मूर्धा का स्पर्श करके सम्बन्धित स्थानों से अभिव्यक्त होकर दूसरों के लिये सुनने योग्य बनती है।

शास्त्रों में जप के कई प्रकारों का वर्णन है, कुछ निम्नानुसार हैं।

एक अपेक्षा के जप के तीन प्रकार हैं–(१) भाष्य, (२) उपांशु, (३) मानस।

(१) भाष्य–'यस्तु परैः श्रूयते भाष्यः' जिसे दूसरे सुन सकें वह भाष्य जप है। यह जप मधुर स्वर से, ध्वनि श्रवण पूर्वक बोलकर वैखरी वाणी से किया जाता है।

(२) उपांशु–'उपांशुस्तु परैरश्रूयमाणोऽन्तर्जल्प रूपः'। इसमें मध्यमा वाणी से जप किया जाता है। इसमें होठ, जीभ आदि का हलन-चलन तो होता रहता है किन्तु वचन सुनाई नहीं देते।

(३) मानस–'मानसो मनोमात्र वृत्ति निर्वृत्तः स्वसंवेद्य।' पश्यन्ती वाणी से जप करना। यह जप मन की वृत्तियों द्वारा ही होता है तथा साधक स्वयं उसका अनुभव कर सकता है। इस जप में काया की और वचन की दृश्य प्रवृत्ति-निवृत्त होती है।

जब मानस जप अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है तब नाभिगता परा ध्वनि से जप किया जाता है। उसे अजपा जप कहते हैं। दृढ़ अभ्यास होने पर इस जप में चिन्तन बिना भी मन में निरन्तर जप होता रहता है। श्वासोच्छ्वास की तरह यह जप चलता रहता है।

मनुस्मृति २/८५-८६ के अनुसार कर्म यज्ञों की अपेक्षा जप यज्ञ दस गुना श्रेष्ठ, उपांशु जप सौगुना और मानस जप सहस्र गुना श्रेष्ठ है।

दूसरी अपेक्षा से जप पांच प्रकार के हैं–(१) शब्द जप, (२) मौन जाप, (३) सार्थ जाप, (४) चित्तस्थ जप = मानस जप–इस जप में एकाग्रता बहुत चाहिए। चंचलता वाले यह जप नहीं कर सकते। अभ्यास से ही चित्त स्थिर होता है। (५) ध्येयैकत्व जप–आत्मा का ध्येय से एकत्व होना। ध्याता और ध्येय के मध्य की भेद रेखा मिट जावे तब जप सिद्ध हुआ कहा जाता है। आत्मा और परमात्मा की ऐक्यता। इसे जप का सर्वस्व कहा जाता है।

*शब्दाज्जापान्मौन-स्तस्मात् सार्थस्ततोऽपि चित्तस्थ।*
*श्रेयानिह यदिवाऽऽवात्म-ध्येयैक्यं जप सर्वस्वम्॥*

शब्द जप की अपेक्षा मौन जप अच्छा है। मौन जप की अपेक्षा सार्थ जप अच्छा है। सार्थ जप की अपेक्षा चित्तस्य जप अच्छा है और चित्तस्थ की अपेक्षा ध्येक्य जप अच्छा है क्योंकि वह जप का सर्वस्व है।

तीसरी अपेक्षा से जाप के तेरह प्रकार हैं–(१) रेचक, (२) पूरक, (३) कुम्भक, (४) सात्विक, (५) राजसिक, (६) तामसिक, (७) स्थिर कृति–चाहे जैसे विघ्न आने पर भी स्थिरता पूर्वक जप किया जाय, (८) स्मृति–दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर कर जप किया जाय। (९) हक्का–जिस मंत्र के पद क्षोभ कारक हों अथवा जिसमें श्वास लेते और निकालते समय 'ह' कार का विलक्षणता पूर्वक उच्चारण करते रहना पड़ता है। (१०) नाद–जाप करते समय भ्रमर की तरह गुंजार की आवाज हो। (११) ध्यान–मंत्र पदों का वर्णादि पूर्वक ध्यान करना। (१२) ध्येयैक्य–'ध्याता और ध्येय की जिसमें ऐक्यता हो। (१३) तत्व–पंच तत्व–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्वों के अनुसार जप करना।

इस प्रकार जप के कई प्रकार हैं।

उच्चारण की अपेक्षा से जाप तीन प्रकार से होता है–(१) ह्रस्व, (२) दीर्घ, (३) प्लुत।

शास्त्रों के अनुसार ओंकार मंत्र का जप ह्रस्व करने से सब पाप नष्ट होते हैं। दीर्घ उच्चारण करने से अक्षय सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा प्लुत उच्चारण करने से ज्ञानी होता है, मोक्ष प्राप्त करता है।

जीवात्मा के चार शरीर माने गये हैं–(१) स्थूल, (२) सूक्ष्म, (३) कारण, (४) महाकारण।

जब जप जीभ से होता है तो उसे स्थूल शरीर का जाप; जप जब कण्ठ में उतरता है तो सूक्ष्म शरीर का; हृदय में उतरने पर कारण शरीर का तथा नाभि में उतरने पर महाकारण शरीर का जप समझना चाहिये।

जप में मौन जप सर्वश्रेष्ठ बताया है। मौन जप करने से शरीर के अन्दर भावात्मक एवं स्नायविक हलन-चलन चलती है। उससे उत्पन्न ऊर्जा एकीकृत होती जाकर शरीर में ही रमती हुई रोम-रोम से निकलती है। शरीर के चारों ओर उन तरंगों का वर्तुल बनता है जिससे व्यक्ति का आभामण्डल प्रभावशाली होता जाता है। उससे उनकी स्वयं की कष्टों को सहन करने की अवरोधक शक्ति तो बढ़ती ही है, साथ ही शरीर से निकली तरंगों के प्रभाव से साधु सन्तों के सामने शेर और बकरी का पास पास बैठना; अरहंतों के प्रभाव से आसपास के क्षेत्र में किसी उपद्रव का, बीमारी का न होना जो शास्त्रों में वर्णित है, हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज के विज्ञान ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि भिन्न-भिन्न प्रकार की तरंगों से भिन्न-भिन्न प्रकार के कई कार्य किये जा सकते हैं। छोटा-सा टी. वी. का रिमोट कन्ट्रोलर ही अपने में से अलग-अलग अगोचर तरंगों को निकालकर टी. वी. के रंग, आवाज, चैनल आदि-आदि बदल सकता है। ओसीलेटर यंत्र की अगोचर तरंगें समुद्र की चट्टान का पता दे सकती है, तरंगों से शरीर में ऑपरेशन किये जा सकते हैं इसी प्रकार साधक द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के जप द्वारा अपने में एकीकृत ऊर्जा से भिन्न-भिन्न मंत्रों में वर्णित कार्य किये जा सकते हैं। आवश्यकता है उन्हें विधिवत् करने की।

पूर्वाचार्यों ने अलग-अलग ध्वनियों से निकलने वाली तरंगों के अलग-अलग प्रभाव जाने और उसी के आधार पर अलग-अलग मंत्र, क्रियाएं आदि बनाये जिनके प्रभावों के बारे में कई बार देखने, सुनने और समाचार पत्रों में पढ़ने में आता है।

मौन जप की भाव धारा यदि हिंसा, कपट, प्रवंचना, प्रमाद, आलस्य की अर्थात् कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या के प्रभाव वाली रही तो व्यक्ति के शरीर से निकली तरंगों का वर्तुल काला, नीला, कबूतर के पंख के रंग जैसा बनेगा और उसका बाहरी प्रभाव भी उसी अनुरूप होगा। यदि मौन जप की भाव धारा शुभ, शुभकर्म, शुभ विचार की अथवा अरुण लेश्या, पीत लेश्या अथवा शुक्ल लेश्या के प्रभाव की रही तो उसके शरीर से निकली तरंगों का पर्तुल लाल, पीला, श्वेत बनेगा।

जप भाष्य से प्रारंभ किया जाकर उपांशु किया जाने के बाद में मानस जप किया जा सकता है। अभ्यास से उसे अजपा जप में भी परिवर्तित किया जा सकता है। इसके लिये श्रद्धा, संकल्प, दृढ़ता, एकाग्रता, तन्मयता, नियमितता, त्याग, परिश्रम विधिवत्ता आदि-आदि की आवश्यकता है।

जपयोग ध्यान व समाधि के लिये सोपान है। आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान से मुक्त कराकर धर्म ध्यान में प्रविष्ट करता है जो परिणाम में शुक्ल ध्यान का हेतु बनता है।

पता–
भानपुरा (म. प्र.) ४५८ ७७५

## अपरिग्रह से द्वंद्व विसर्जन : समतावादी समाज रचना

–मुनि प्रकाशचन्द्र 'निर्भय'
(मालव केसरी, गुरुदेव श्री सौभाग्यमल जी म. सा. के शिष्य)

प्रवर्तमान इस वैज्ञानिक यन्त्र युग में विविध विकसित सुख-साधनों की जैसे-जैसे बढ़ौत्तरी होती जा रही है, वैसे-वैसे मनुष्य का जीवन अशान्ति/असन्तुष्टि/संघर्ष/द्वंद्व से भरता चला जा रहा है। अधिकाधिक सुविधा सम्पन्न साधनों की अविराम दौड़ में लगा मानव भन, क्षणभर को भी ठहर कर इसकी अन्तिम परिणति क्या होगी, इसके लिए सोचना/चिंतन करना नहीं चाहता है। संप्राप्त इंधन से अग्नि के समान मानव मन तृप्त होने की बजाय और अधिक अतृप्त बनकर जीवन विकास के स्थान पर जीवन विनाश के द्वार को खोल रहा है। मानव समाज में जहाँ एक ओर साधन सम्पन्न मानव वर्ग बढ़ रहा है, उससे भी अनेकगुण वर्धित दैनिक साधन से रहित मानव वर्ग बढ़ता जा रहा है। दो वर्ग में विभिन्न मानव समाज द्वंद्व/संघर्ष का कारण बन रहा है। क्योंकि एक ओर विपुल साधनों के ढेर पर बैठा मानव समाज स्वर्गीय सुख की सांसें से रहा है, तो दूसरी ओर साधन अभाव की अग्नि से पीड़ित मानव समाज दुःख की आहें भर रहा है। ऐसी स्थिति में मानव-मानव के बीच हिंसक संघर्ष/द्वंद्व होने लगे तो क्या आश्चर्य है? कुछ भी तो नहीं। तृष्णा की इस जाज्वल्यमान अग्नि से अहिंसा का प्रकाश नहीं अपितु हिंसा की ज्वाला ही भड़कती है। हिंसा के पीछे परिग्रह/तृष्णा का ही हाथ है और अहिंसा की पीठ पर अपरिग्रह/संविभाग का।

**अहिंसा और अपरिग्रह**–विश्ववंद्य, अहिंसा के अवतार, श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामी ने पंच व्रतात्मक जिन धर्म का प्रतिपादन किया है–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। सामान्य दृष्टि से ये सब भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं किन्तु विशेष दृष्टि से-चिंतन की मनोभूमि पर ये विलग नहीं, एक-दूसरे से संलग्न हैं। एक-दूसरे के प्रपूरक हैं। इनमें से न कोई एक समर्थ है और न कोई अन्य कमजोर। ये सबके सब समर्थ हैं, एक स्थान पर खड़े हैं। एक व्रत की उपेक्षा अन्य की उपेक्षा का कारण बन जाती है, एक के सम्पूर्ण परिपालन की अवस्था में सभी का आराधन हो जाता है। अहिंसा के विकास बिन्दु से प्रारंभ हुई जीवन यात्रा अपरिग्रह के शिखर पर पहुँचकर शोभायमान होती है, तो अपरिग्रह से उद्गमित जीवन यात्रा अहिंसा के विराट् सागर पर पूर्ण होती है। शेष तीन व्रत–सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य यात्रा को पूर्णतया गतिशील बनाये रखने में सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org